दिनकर काव्य में प्रतीक–विधान

डॉ0 मंजु मिश्रा*

जो बात पर्याप्त शब्दों का प्रयोग करके पूरी तरह नहीं कही जा सकती, उसे कुशलतापूर्वक संक्षेप में निवेदित कर सकने के लिए मनुष्य ने प्रतीकों का आविष्कार किया, यही कारण है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हम प्रतीकों का प्रयोग देखते हैं। कलाकार स्वानुभूति के जिन अंशों को सामान्य अभिव्यक्ति के प्रचलित साधनों (शब्द, रेखा, ध्वनि आदि) द्वारा व्यक्त करने में असमर्थ होता है, उन अंशों की व्यञ्जना या अभिव्यक्ति के लिए ही प्रतीकों का सहारा लेता है। भारतीय काव्यशास्त्र में 'प्रतीक' के लिए 'उपलक्षण' शब्द का प्रयोग हुआ है। आचार्य शुक्ल ने भी ''उपलक्षण'' और ''प्रतीक'' का एक ही साथ प्रयोग किया है।[1]

'प्रतीक' अनुभव अथवा सहानुभूति की अवस्थाविशेष के शाब्दिक प्रतिरूप हैं।[2] काव्य में जिन प्रतीकों का प्रयोग होता है उनमें कवि की व्यक्तिगत रूचि, मेधा, कल्पना और भावानुरूप भिन्नता आती रहती है। काव्य में प्रतीकों का अत्यधिक महत्त्व होता है। काव्य में प्रयुक्त प्रतीक केवल अभिव्यक्ति का साधन ही नहीं होते वरन् उनका सौन्दर्यगत एवं आन्तरिक मूल्य भी होता है। प्रतीक विधान कवि के द्वारा की गयी भाषा की विशिष्ट प्रयोग विधि है। अज्ञेय का मत है जिस बोध को हम अभिधा में नहीं बाँध पाते उसे आत्मसात करने या प्रेषित करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार वह प्रतीक को ''ज्ञान का उपकरण'' मानते हैं।[3]

केदार नाथ सिंह ने प्रतीक को अन्य वस्तुओं का प्रतिनिधित्व करने वाला परम्परागत संकेत कहा है। ''प्रतीक का एक पक्ष बराबर परम्पराजीवी और समाज–स्वीकृति सापेक्ष होता है।... वह निरन्तर प्रयुक्त होते–होते ही नियत अर्थ और निश्चित आकार ग्रहण करता है।''[4]

रामकुमार वर्मा का मत है ''प्रतीकों का सम्बन्ध शब्द–शक्ति की ध्वनिशैली से है। अतः साहित्य में अर्थ की विपुलता के लिए प्रतीक सदैव प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार मधु का एक बिन्दु सहस्त्र पुष्पों की सुगन्धि एवं मकरन्द का संश्लिष्ट रूप है उसी भाँति एक प्रतीक अनेकानेक मानव–जगत् और वस्तु–जगत् के कार्य व्यापारों का संकलन है। अतः साहित्य के इतिहास में मंत्र से लेकर आत्मबोध की अनेकानेक भावनाएँ इसी प्रतीक द्वारा उद्‌बुद्ध हुई हैं। प्रतीक व्यष्टि में समष्टि का सम्पोषण है''[5]

अतः नीचे 'प्रतीक वह जादुई कुंजी है जो सभी द्वारों को खोल सकती है, सभी प्रश्नों का समाधान कर सकती है... प्रतीक अत्यन्त स्पष्ट, परिच्छिन्न और उपादेय होता है; इसमें कोई सन्देह नहीं और सादृश्य ऊपर से अस्पष्ट, उलझा हुआ अनुपादेय और मानवचिन्तन के लघुताग्राही महत्त्व को कम करने वाला भी लगता है। कभी–कभी तो यह एक अनावश्यक और अतिरिक्त सजावट सा प्रतीत होता है किन्तु जहाँ कहीं अर्थ बने–बनाये सिद्ध प्रतीकों से पूरा–पूरा नहीं ग्रहीत हो सकता है, वहाँ प्रतीक की छोड़ने की लाचारी सामने आ जाती है।[6]

इस प्रकार प्रतीक अपने सहज रूप में अमूर्त विचार का प्रतिरूप या स्थानापन्न मात्र न होकर किसी ऐसे आदर्श विषय–सौन्दर्य–विहीन अर्थ के मूर्तीकरण का साधन है जिसकी अभिव्यक्ति किसी अन्य साधन से सम्भव नहीं। प्रतीकों को उचित अर्थवत्ता प्रदान करने की क्षमता कवि की संवेदना पर निर्भर करती है। इनका चयन कवि की सौन्दर्य–भावना एवं अनुभव पर आधृत होता है। चित्रात्मकता साहित्यकार के प्रतीकों का गुण है।

* असि0 प्रो0– हिन्दी विभाग, महाराज बलवंत सिंह पी0जी0 कालेज, गंगापुर, वाराणसी

प्रसाद की मान्यता है कि प्रतीकों के द्वारा सौन्दर्य बोध को मूर्तिमत्ता तथा संवेदनों को आकार प्रदान किया जाता है। इस सम्बन्ध में उनका विचार है, ''सौन्दर्य बोध बिना रुप के हो नहीं सकता। सौन्दर्य की अनुभूति के साथ ही साथ हम अपने संवेदनों को आकार देने के लिए, उनका प्रतीक बनाने के लिए बाध्य हैं।''[7]

दिनकर की कविता लौकिक जीवन–जगत की कविता होने कारण रुढ़ प्रतीकयुक्त नहीं है। ये छायावादी प्रतीकों से अपने को प्रारम्भ से ही अलगाने लगते हैं। यद्यपि इनकी प्रारम्भिक कविताओं में परम्परायुक्त प्रतीकों का प्रयोग हुआ है जिससे कहीं–कहीं कविता में अभिजात्य और औदात्य की सृष्टि की गई है। दिनकर की 'हिमालय' नामक कविता मानव–मन के उच्चतम भावों–आकांक्षाओं का प्रतीक कही जा सकती है। मलयानिल, अलि, दीप, शून्य, कोयल आदि भाव–व्यंजक उपलक्षण सीधे छायावाद से दिनकर के यहाँ आ गए हैं। परन्तु दिनकर इनका उपयोग ज्यों का त्यों न कर वस्तुवादी आसंगों के उभारने के लिए करते हैं–

चलो, जहाँ निर्जन कानन में वन्य कुसुम मुस्काते हैं,
मलयानिल भूलता, भूलकर जिधर नहीं **अलि** जाते हैं।
कितने दीप बुझे झाड़ी–झुरमुट में ज्योति पसार?
चले शून्य में सुरभि छोड़कर कितने कुसुम कुमार?[8]

दिनकर की कविता में आग, सिंह, सर्प आदि प्रतीकों का बहुशः प्रयोग हुआ है। आग द्वारा उक्त कवि क्रान्ति, क्रोध, उग्रता, आवेग, विद्रोह, ध्वंस आदि भावों को प्रकट करता है।[9] कवि–काव्य में आग ध्वंसकारी प्रवृत्ति की प्रतीक है तो कवि उसी से सृजन तथा नवीन आशा की चिनगारी जैसे विरोधी भाव के आग मन को भी संकेतित करता है–

प्रभो– रिक्त यदि कोश विभा का तो फिर इतना ही कर दे, दे जगती को फूँक, तनिक झिलमिला उठे यह अँधियाली।[10]

यहाँ यह प्रतीक 'विरोधी भाव' व्यंजक न होकर यथार्थाश्रित अथवा लाक्षणिक ही अधिक है। परन्तु यह कवि के आवेग को अवश्य व्यक्त करता है। दिनकर 'सिंह' प्रतीक के माध्यम से पौरुष, आत्मविश्वास और बल की व्यंजना करते हैं। वे अपने को 'उदय प्रान्त का सिंह' घोषित करते हैं जिसके 'सिंहनाद' से धरती सहमकर डोलती रहती है। जुझारु और हिंस प्रकृति के कारण सिंह के माध्यम से वे क्रांति के भावों की व्यंजना अधिक करते हैं–

मैं जहर उगलती फिरती हूँ, मैं विष से भरी जवानी हूँ,
भूखी बाधिन की घात क्रूर, आहत **भुजंगिनी** का दंसन।
झन–झन–झन–झन–झनन–झनन?[11]

परन्तु कोमल भावों के सामने दिनकर का 'सिंह' भी लाचार हो जाता दिखाई देता है–

हो गया मदिर दृगों को देख
सिंह विजयी बर्बर लाचार,
रुप के एक तन्तु में नारि,
गया बंध मत्त गयंद कुमार।''[12]

'व्याल भी दिनकर के प्रतीकों में महत्तवपूर्ण स्थान रखता है। यह छलप्रपंच, विश्वासघात, दुष्टता, ईर्ष्या का साकार प्रतीक है–

उस पुण्य भूर्मि पर आज तपी
रे, आन पड़ा संकट कराल

व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे,
डस रहे चतुर्दिक विविध **व्याल**।[13]

'अमा' कवि के अंधकार ग्रस्त मानस एवं निराशा का प्रतीक है। इसके विपरीत 'चाँदनी' आशा वा प्रसन्नता का प्रतीक है। इसके विपरीत 'चाँदनी' आशा व प्रसन्नता का प्रतीक है। इसीलिए कवि यह प्रतिज्ञा करता है कि वह चंद्रिका लाने का प्रयास करेगा–

उठा अमर तूलिका, स्वर्ग का भूपर चित्र बनाउँगी,
अमापूर्ण जग के आँगन में आज चंद्रिका लाऊँगी।।[14]

अंधकार के बाद प्रकाश से संपूर्ण जग–जीवन में नया चैतन्य छा जाता है। कवि दोनों विरोधी एवं संश्लिष्ट भावों के प्रतीकों को एक साथ प्रकट करता है–

जाग प्रिये! यह अमा[15] स्वयं बालारुण–मुकुट लिए आयी, जल, थल, गगन, पवन, ऋण, तरु पर अभिनव एक विभा छायी।[16]

दिनकर के अन्य प्रकृति संबन्धी प्रतीकों में धीरे–धीरे भावपरकता कम होती चली जाती है। वे उशा, उडु आदि के स्थान पर 'वज्र'[17] का प्रयोग करते हैं जो साहित्य में हिंसा और त्रास का भाव उदित करते हैं।[18] झंझा भी कवि का प्रिय प्रतीक है जिससे आवेग की व्यंजना हुई है।

कहीं–कहीं कवि अनेक प्रतीकों को भावसाम्य एवं भावों के तीव्र आवेग के कारण एक स्थान पर एकत्रित कर देता है। यह इस पर निर्भर है कि किस भाव से प्रेरित हैं, उस भाव में कितनी शक्ति है[19] क्रांति के सन्दर्भ में निम्न प्रतीक द्रष्टव्य हैं–

मेरे मस्तक के आतपत्र खर काल सर्पिणी के शत फन,
मुझ चिरकुमारिका के ललाट में नित्य नवीन रुधिर–**चन्दन,**
आँजा करती हूँ **चिता–धूम** की दृग में अंध **तिमिर**–अंजन
संहार लपट का चीर पहन नाचा करती मैं छूम–छनन।[20]

कहीं पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से तात्कालिक आसंगों को अभिव्यक्ति दी गई है। अवला नारी के लिए द्रौपदी प्रयोग आलंकारिक अथवा कटु व्यंग्य ही अधिक है–

किन द्रौपदियों के बाल खुले? किन–किन कलियों का अंत हुआ?[21]

निष्कर्षतः कह सकते है कि दिनकर जी सहज साधारण बोलचाल की भाषा अपनाते हुए छायावादी काव्यभूमि से अपने अलगाव की सूचना देने लगते हैं। निरन्तर वायवीय होती चली जा रही कविता को यथार्थ भूमि का स्पर्श कराने में भी कवि का महत्तवपूर्ण योगदान है। इनकी कविता दैनिक जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूति एवं आस–पास के जगत् से संबद्ध हो गयी तो सामाजिक रूढ़ियों का विरोध अथवा मध्यवर्गीय खंडित चेतना के गीत भी गाने लगते हैं। फिर भी वे मांसल अनुभूति व कोमल भावों के ही कवि रहे है– जहाँ सार्वजनिक एवं सहज–साधारण का अखण्ड साम्राज्य है। ऐसे में, बिम्ब और प्रतीक जैसे रूप–विधान कवि की अनुभूति और भाषा के स्वभावानुकूल नहीं पड़ते। फिर भी दिनकर काव्य में प्रयुक्त प्रतीक हैं। उनके काव्य में अथगाम्भीर्य को बढ़ाने में सहायक हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 639
2. कुमार विमल : छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन, पृ0 234
3. असेय : आत्मने पद, पृ0 45
4. सिंह, केदारनाथ : आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब–विधान का विकास, पृ0 28

5. वर्मा राजकुमार : साहित्यशास्त्र, पृ0 118
6. माटिर्न फॉस : सिम्मबल एण्ड मेटाफर इन ह्यूमन एक्सपीरियन्स, पृ0 18–19
7. प्रसाद, जयशंकर : काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ0 35
8. चक्रवाल, दिनकर, पृ0 10, 19, 133
9. वही
10. वही
11. वही, पृ0 73, 96, 7
12. वही
13. वही
14. वही, पृ0 62, 76, 137
15. वही
16. वही
17. वही, पृ0 52, 81, 71
18. वही
19. वही
20. निराला की साहित्य साधना (भाग दो), रामविलास शर्मा, पृ0 325
21. अभिनव सोपान, बच्चन पृ0 49

●